International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 05-08-2020; Accepted: 20-08-2020; Published: 06-08-2020
www.socialsciencejournal.in
Volume 6; Issue 5; 2020; Page No. 05-06

भारत में कृषक–आन्दोलन का ऐतिहासिक दृष्टिकोणः एक विश्लेषण

संध्या कुमारी
पूर्व शोध छात्रा (इतिहास विभाग) मगध विश्वविद्यालय, बोध, गया, बिहार, भारत

सारांश
भारत में कृषक आन्दोलन का एक सुदृढ़ इतिहास रहा है जिसे ऐतिहासिक दृष्टिकोण से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–प्रथम स्वतंत्रता–पूर्व कृषक आन्दोलन तथा द्वितीय स्वतंत्रता–पश्चात् कृषक आन्दोलन। जहाँ तक स्वतंत्रता–पूर्व कृषक आन्दोलन का प्रश्न है, इस पर विभिन्न दृष्टिकोण से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है–विशेषतः कृषक आन्दोलन के प्रति अंग्रेज प्रशासकों की दृष्टिकोण अकार्यात्मक रही है। उनकी दृष्टि में कृषक आन्दोलन सरकार एवं समाज को कमजोर करने के लिए चलाए जाते थे। जैसे–मोपला विद्रोह को अंग्रेजों ने हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष का नाम देकर उसे साम्प्रदायिक रूप देने का प्रयत्न किया था। लेकिन ठीक इसके विपरीत प्रो. धनागरे का विश्लेषण है, जिसमें कृषक विद्रोह को राजनैतिक गतिविधियों की अन्तःक्रिया का रूप देकर चित्रित किया गया है। इस प्रकार कृषक आन्दोलनों का अध्ययन विभिन्न विद्वानों ने अपनी–अपनी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।1

मूल शब्दः कृषक आन्दोलन, मोपला विद्रोह, ब्रिटिश सरकार, जमींदारी व्यवस्था, भू–दान, बटाईदारी, साहूकार

प्रस्तावना

कृषक आन्दोलन का 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए कुछ अन्य आन्दोलनों के संदर्भ में रंगाराव के तेलंगाना के कृषक आन्दोलन को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इन्होंने हैदराबाद राज्य की सामाजिक–आर्थिक संरचना पर सम्यक प्रकाश डालने का प्रयत्न भी किया है। इस आन्दोलन में साम्यवादी दल द्वारा हैदराबाद की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का वास्तविक विश्लेषण स्वीकार किया है। रंगाराव की भाँति राजेन्द्र सिंह ने उत्तर प्रदेश के कृषक आन्दोलनों की व्याख्या की है। 1946 का निजाई बोल–आन्दोलन तथा 1970 का भूमि–हड़पो आन्दोलन रंगाराव के तेलंगाना कृषक आन्दोलन के समकक्ष था।2

उपर्युक्त तथ्यगत अध्ययन किसान आन्दोलन का ऐतिहासिक विश्लेषण है। यह द्वैतियक स्रोतों पर आधारित है। यह अध्ययन विभिन्न शोधकर्त्ताओं द्वारा लिखित पुस्तकों, पत्रों एवं उनके संस्मरणों इत्यादि पर आधारित है। भारत के किसान आन्दोलन का उल्लेख सरकार की विभिन्न फाइलों से प्राप्त किया गया है। साथ ही भारत के किसान सभा तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा पुस्तकों में उपयोग की गई तथ्यों तथा टिप्पणियों का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन की उपादेयता इस दृष्टि से भारत के किसान–आन्दोलन के समग्र विश्लेषण से सम्बन्धित है।3

ब्रिटिश–भारत में कृषक आन्दोलन का अध्ययन अंग्रेज शासकों द्वारा प्रशासनिक सुविधा की दृष्टिकोण से कराया गया था। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के भू–नीतियों के प्रति करना था। परिणामस्वरूप इसमें ब्रिटिश सरकार द्वारा उत्पन्न की गई आर्थिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के सम्बन्धों पर विचार कर भारतीय समाज की रूढ़िगत संस्थाओं को आर्थिक पिछड़ेपन के कारक के रूप में दोषी ठहराने का प्रयत्न किया गया था। इसके अतिरिक्त सहजानन्द सरस्वती द्वारा लिखित किसान आन्दोलन का अध्ययन किया गया है। 19वीं शताब्दी भारत के इतिहास में चतुर्दिक विकास का काल कहा जा सकता है। एक ओर बुद्धिजीवी वर्ग भारत में नये सामाजिक मापदण्डों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील था, और दूसरी ओर भारतीय कृषक–समाज अंग्रेजी शासकों एवं भारतीय जमींदारों से संघर्ष कर रहा था, लेकिन अंग्रेज शासकों ने तत्कालीन कृषकों के संघर्ष को दंगा का रूप देकर उसकी उपेक्षा की थी।4 जैसे दक्षिण के मोपला विद्रोह को ही लिया जा सकता है। अंग्रेजों द्वारा इस विद्रोह को मात्र हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष की संज्ञा दी गई थी। ऐसे विश्लेषणों पर थोड़ा विचार करना अनुचित न होगा। धनागरे ने अपने विश्लेषण में यह स्पष्ट किया है कि मोपला कृषक–विद्रोह वर्षों से चले आ रहे कृषि आन्दोलन का परिचायक था। इसके विपरीत वुड ने मोपला विद्रोह को शासन व्यवस्था के लिए एक चुनौती स्वीकार किया है। अतः मोपला कृषकों ने भूपतियों के शासन को समाप्त करने के लिए अंग्रेजी सरकार से विद्रोह किया। इसी से जुड़ा हुआ एक दूसरा विश्लेषण नम्बूदरीपाद का है जिसमें केरल के कृषक आन्दोलन का विश्लेषण किया गया है। उपर्युक्त अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि समग्रतः, किसी ने वास्तविकता पर विचार नहीं किया है तथा अध्यताओं का सर्वाधिक ध्यान सामाजिक–आर्थिक शक्तियों पर केन्द्रित रहा है।5

अवध का कृषक आन्दोलन मुख्यतः मध्यम वर्गीय एवं सामंत कृषकों द्वारा 1920 से लेकर 1932 के बीच चलाया गया था। इसका अर्थ यह है कि गरीब कृषकों को राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से अलग–थलग कर दिया गया था। दूसरी ओर काँग्रेस का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए कृषकों को संगठित करना था। इसी तरह अवध के किसानों ने बेदखली एवं नजराना के विरोध में आन्दोलन किया। इस आन्दोलन को काँग्रेस पार्टी ने भी समर्थन किया। आचार्य नरेन्द्र देव ने 1939 में अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए इस संगठन के महत्त्व पर प्रकाश डाला और काँग्रेस का इसे एक पूरक संगठन कहा था। विभिन्न राज्यों में इसके नेतृत्व के अधीन कृषक–व्यवस्था प्रारम्भ हुए। पंजाब में जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करने के लिए अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष करने के कारण गैर–साम्यवादी सदस्य इससे अलग हो गए।6

बिहार के बाद दूसरा स्थान बंगाल का है, जहाँ कृषकों का संगठन एवं गतिविधियाँ वैचारिक दृष्टिकोण से आपस में जुड़ी हुई थी। इसी प्रकार 1946–47 ई. के बीच तेमगा–आन्दोलन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, जिसमें लगान देने वाले किसानों ने सामंतवाद–व्यवस्था का विरोध किया। धनागरे ने इस आन्दोलन की संरचनात्मक स्वरूप के सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया कि यह आन्दोलन बंगाल के कृषकों के

राजनीतिकरण का परिणाम है। भारत के इतिहास में राजनीतिक दृष्टिकोण से कृषकों द्वारा चलाया गया यह प्रथम आन्दोलन था। समाज वैज्ञानिकों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कृषक आन्दोलन को नवीन परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न किया गया। भूमि–सुधार सम्बन्धी अनेक अधिनियमों, जमींदारी उन्मूलन तथा जमींदारों के बीच मध्यस्थों को हटाया जाना, कृषकों के लिए न्यूनतम मजदूरी तथा बटाईदारी नियमों में परिवर्तन इत्यादि से एक नवीन कृषक नीति उभरी। लेकिन यह नियम इतनी मन्द गति से लागू हुआ कि इसका परिणाम तथा प्रभाव पूर्णतः नगण्य रहा। इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि भूमिपतियों के अधिकारों के विपरीत जमीन पर कृषि कार्य करने वालों के अधिकार का विकास हाल–फिलहाल की एक घटना स्वीकार की जाती रही है। इसके विपरीत उन किसानों के अधिकार एवं स्वामित्व अभी तक पूर्णतः समायोजित नहीं हो पायी है। बिहार में इसकी पराकाष्ठा को अवलोकित की जा सकती है। डेनियल थॉर्नर ने विस्तार से लिखा है कि किस प्रकार जमींदारी उन्मूलन–अधिनियम पास हो जाने के पश्चात् 8 वर्ष तक बिहार के अधिकांश जमींदारों का अपनी जमीन पर कानूनी अधिकार कायम था।7

भू–दान एवं ग्रामदान का उद्देश्य समाज में आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन लाना था। केवल बिहार में 1969 तक इस योजना के तहत 29,17,467 एकड़ भूमि भू–दान में प्राप्त हुई थी जिसमें से 3,77,592 एकड़ भूमि 68,550 हरिजनों तथा 35,700 आदिवासियों के मध्य वितरित की गई थी। इसी प्रकार 1965 तक 7,500 ग्राम तथा 31 जिले विनोबा जी को दान में किसानों द्वारा प्रदान किए गए थे। भू–दान आन्दोलन की सफलता को इसी आधार पर समझा जा सकता है कि भू–दान में प्राप्त की गई भूमि को आवंटित करने में कार्यकर्त्ता सदैव पिछड़ते रहे। लेकिन यह आन्दोलन बहुत दिनों तक चलाया नहीं जा सका। समाज वैज्ञानिकों ने इस आन्दोलन के असफलता के कारणों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। प्रो. मुखर्जी ने स्पष्ट किया है कि ग्रामदान के द्वारा भारत के गाँवों में एक नवीन प्रकार का नेतृत्व विकसित हो रहा है। ग्रामीणों में संगठित होने की चेतना तथा आपसी समरूपता में भी वृद्धि हो रही है।8

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मराठा किसान भी जमींदारों और साहूकारों के दमन के प्रतिरोध स्वरूप पूरे जोश–खरोश के साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने साहूकारों के मकान जला डाले, उनकी जायदाद तथा अन्य संपति को नष्ट कर दिया तथा जुल्म ढाने वालों तथा उनकी सहायता में आए सरकारी कर्मचारी को मार दिया। इस प्रकार बम्बई, कैरा, अहमदाबाद तथा पूना में किसान विद्रोह हुए। किसानों का मुख्य मकसद था कि साहूकारों के कब्जे में जो इकरारनामे थे, उन्हें नष्ट कर दिया जाए। कुछ साहूकारों ने किसानों को कागज लौटा दिये और जहाँ कागज नहीं लौटाये गए वहाँ हिंसक झड़प की नौबत आयी ताकि वे कागजात सौंप दें। ब्रिटिश शासकों ने इन कारवाइयों से विवश होकर ''दक्कन कृषक राहत अधिनियम'' पारित किया जिसमें यह प्रावधान रखा गया कि मराठा किसानों को कर्ज अदा न कर पाने की स्थिति में कैद नहीं किया जा सकता है।9

इस सदी के सातवें दशक में पंजाब में खेतों के रेहन रखे जाने की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी। नतीजा यह हुआ कि जमीन कृषकों के हाथ से खिसककर साहूकारों के हाथों में आ रही थी। इस स्थिति को पहले तो ब्रिटिश शासन ने प्रश्रय दिया। लेकिन कानून और व्यवस्था की बिगड़ती हुई स्थिति, पश्चिमी पंजाब के गाँवों में अपराध एवं हिंसा की बढ़ोत्तरी, सिक्ख काश्तकारों के कनाडा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए प्रवासन तथा सैनिक भर्ती पर प्रतिकूल असर पड़ने के कारण ब्रिटिश अधिकारियों को सोचने के लिए विवश कर दिया। क्योंकि इसके पहले बाबा रामसिंह के नेतृत्व में 'कूका आंदोलन' ने ब्रिटिश प्रशासन को हिला दिया था। फलतः 1900 ई. में ''भूमि अन्यसंक्रामक अधिनियम'' पारित हुआ जिसे जून 1901 में लागू किया गया। इस अधिनियम के तहत, पंजाब के लोगों को कृषक और गैर कृषक जातियों और वर्गों में बांटा गया और इसमें प्रावधान किया गया कि भूमि गैर–कृषक वर्गों को हस्तांतरित नहीं की जा सकती।10

भारत में नई लगान व्यवस्था के परिणामस्वरूप, औपनिवेशिक शोषण का कोप भाजन किसानों को झेलना पड़ा। इसलिए ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ क्रांति की मशाल सर्वप्रथम किसानों और उनके सहयोगियों ने उठाई। ये कृषक विद्रोह स्वतः ही फूट पड़े थे और संचार माध्यमों में कमी के कारण अखिल भारतीय स्तर पर उनके बीच कोई समन्वय नहीं था। अतः ये विद्रोह किसी सुनियोजित आंदोलन का अंग न होकर अलग–थलग घटनाओं के रूप में थे। सहज रूप से प्रेरित तथा प्रायः असंगठित होने के कारण इन आंदोलनों का स्वरूप काफी हद तक हिंसात्मक था। न्याय एवं व्यवस्था को कायम रखने के नाम पर औपनिवेशिक कृषक ढांचे को बनाए रखने के लिए जो कोशिशें की गई उनका किसानों ने काफी विरोध किया लेकिन इससे ब्रिटिश शासन–व्यवस्था पर कोई खास असर नहीं पड़ा।11

निष्कर्ष

इस प्रकार इस शोध आलेख में वर्णित तथ्यों तथा उसके विश्लेषणात्मक विवेचन से स्पष्ट है कि देश के विभिन्न भागों में ब्रिटिश साम्राज्यवादी व्यवस्था के चलते उत्पन्न शोषणवादी सामाजिक संरचना के खिलाफ खासतौर से कृषक वर्गों को आगे आना पड़ा। कृषक–आंदोलन मूल रूप से ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध आंदोलन था। यदि गौर किया जाय तो आने वाले दिनों में इसका सकारात्मक परिणाम सामने उभर आये। ये आंदोलन ही स्वतंत्रता आंदोलन के बीज–तत्व साबित हुए। इसलिए इन कृषकों का असंगठित आंदोलन भी भारतीय राजनीति के क्षेत्र में अपना असाधारण स्थान रखता है।

संदर्भ सूची

1. डी. एन. धनागरे–अग्रेरियन कॉन्क्लिक्ट–रिलीजन एण्ड पॉलिटिक्स द मोपला रिवैलयन इन मालावार इन द नाइन्टीन्थ एण्ड अर्ली ट्वैन्टिएथ सेन्चुरीज, पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, नं.–74, 1974 जनवरी
2. पी. सी. जोशी–लैंड रिफार्म्स इन इण्डिया–ट्रेण्ड्स एण्ड प्रस्पैक्टिव्स, एलायड पब्लिशर्स लि., 1975 बम्बई
3. नटराजन एल. – पीजेन्ट अपराइजिंग इन इंडिया 1850–1900 पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, 1953 बम्बई
4. डी. एन. धनागरे–पूर्वोक्त
5. वुड कनार्ड – दी मोपला रिवैलियन्स बिट्वीन 1800–02 एण्ड 1921–22, इन्डियन इकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, 1976
6. नम्बूदरी पाद – ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ द पीजेन्ट इन केरल, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1943, बम्बई
7. माइरन वाइनर – द पॉलिटिक्स ऑफ स्केयर सिटी, एशिया पब्लिशिंग हाउस, न्यू दिल्ली, 1963
8. हाउजर – द बिहार प्राविन्सियल किसान सभा 1929–41, ए स्टडी ऑफ ऐन इंडियन पीजेन्ड मूवमेंट, अप्रकाशित पी–एच. डी. थीसिस, शिकागो विश्वविद्यालय
9. एन. जी. रंगा – इंडियन पीजेंट्स स्ट्रगल एण्ड एचीभमेंट, इन ए. आर. देसाई, पीजेंट्स स्ट्रगल इन इंडिया, बम्बई, 1979
10. सत्या एम. राय (1984) – लेजिस्लेटिव पॉलिटिक्स एण्ड फ्रीडम स्ट्रगल इन पंजाब 1897–1947, नई दिल्ली
11. एस. गुप्ता – भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011